Volume II, Issue XI
July to September 2015

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 0.715 (2014)

Naveen Shodh Sansar

(An International Multidisciplinary Refereed Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

68. निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श (कुछ प्रमुख पात्र) (डॉ. वन्दना अग्निहोत्री) 179
69. राजी सेठ की कहानियों में नारी समस्याएँ (डॉ. वन्दना अग्निहोत्री, आशा शरण) 181
70. सातवें–आठवें दशक की हिन्दी कहानी में दलित चेतना (डॉ. स्वामी राम बंजारे 'सरल') 183
71. भक्तिकालीन राम काव्य की परम्परा (डॉ. शबनम खान) 185
72. आतंकवाद और राष्ट्रीय एकता (डॉ. रशीदा खान) 187
73. हिन्दी कथा साहित्य में आदिवासी जीवन की उपस्थिति (डॉ. रत्नेश विश्वक्सेन) 189
74. व्यंग्य का आरम्भिक स्वरूप – एक अध्ययन (डॉ. रमेश टण्डन) 191
75. वापसी – वापसी की पुन:सम्भावना (साहित्य के कोने से चिंतन) (रूपा ठाकुर, डॉ. अनिता सोनी) 193
76. प्रसाद काव्य में प्रकृति चित्रण (डॉ.सरोज यादव) 195
77. जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रमुख स्त्री–पात्रों के सामाजिक आयाम – 'त्यागपत्र के विशेष संदर्भ में ' (डॉ. चंदा तलेरा जैन) 197
78. बालगीतों में बाल मन की अभिव्यक्तियाँ (डॉ. जयश्री भटनागर) 199

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

79. Tradition V/S Modernity: With Special Reference Of Gita Mehta's Raj (Prerana Jain) 200
80. Impact of Cubism on the poems of T. S. Eliot (Sehba Jafri) 203
81. The Notion Of 'WOMAN' In R. K. Narayan's The Dark Room And Waiting for the Mahatma 206
(Muzaffar Khan, Dr. G. S. Rathore)
82. Metaphysics is the Basis of John Donne's Poetry ; A Critical Review 208
(Pragyaa Gupta, Prashant Mahajan)
83. An overview of the major studies on English Language Teaching in India 210
(Dr. Rekha Tiwari,Sonal Kanthaliya)
84. Ethical And Moral Issue In Bhavbhuti's Uttarramcharitam (Joyce Anjali Gulab) 212

(Sanskrit / संस्कृत)

85. मुनि श्री प्रणम्यसागरजी द्वारा विरचित संस्कृत रचनाएँ (शुभम् जैन) 214

(Music / संगीत)

86. युगान्तकारी परिवर्तक –बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (डॉ. जितेन्द्र शुक्ला) 217

(Education / शिक्षा)

87. Values and job satisfaction of elementary school teachers : An analytical study 219
(Dr. Rashmi Sharma)
88. Negotiation Skills In The Classroom (Dr. Neena Aneja) 223
89. अध्यापक शिक्षा में नवाचार (डॉ. पंकज पारीक, पुष्पा बोल्या) 225
90. शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्धन (डॉ. सुगन शर्मा, इति व्यास) 227

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) July to September 2015, Vol. II
ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Imapct Factor - 0.715 (2014)

व्यंग्य का आरम्भिक स्वरूप – एक अध्ययन

डॉ. रमेश टण्डन *

शोध सारांश – जब बुद्धिजीवी वर्ग अन्याय और विसंगति का विरोध करता है तो वह हिंसा से नहीं, कलम के बल पर विरोध करता है। यही कारण है कि साहित्य-सृजन के साथ-साथ व्यंग्य का स्वर भी उभरता चला आया है। परन्तु प्रारम्भिक दिनों में गद्य का प्रचलन नहीं था और लेखन कार्य पद्यात्मक शैली में ही होता था, इसलिए उन दिनों व्यंग्य निबन्ध का अभाव रहा। इसके अतिरिक्त लोगों के मनोरंजन के लिए हास्य प्रधान व्यंग्य पद्य में आया। अनन्तर, कुत्सित सामाजिक मान्यताओं को उखाड़ फेंकने का कार्य बीच-बीच में समाज सुधारकों ने किया। चूँकि मामला संशोधन का था या पूर्ण रूपेण परिवर्तन का था, इसलिए उन सामाजिक सुधारकों का स्वर भी व्यंग्यात्मक ही था। व्यंग्य वही है जो बेकार हो चुकी परम्पराओं को पूरी तरह परिवर्तित कर दे और विसंगतियों को दूर कर उसे अपेक्षित सुधार दे, साथ में जिम्मेदार लोगों की नजर को वहाँ आकृष्ट करे जहाँ अमानवीय कर्मों का कुण्ड हो।
शब्द कुंजी – आरम्भिक व्यंग्य हास्य प्रधान पद्यमय व समाज सुधारात्मक था।

प्रस्तावना – देव वाणी संस्कृत में व्यंग्य के स्वरूप पर डॉ0 श्रीराम ठाकुर 'दाक्ष' का यह उद्धरण दृष्टव्य है, 'संस्कृत के स्वर्णयुग प्रथम शताब्दी ई0 पू0 से 700 ई0 के बीच भी महाकाव्यों में कहीं-कहीं हास्य व्यंग्य का प्रयोग हुआ है-जैसे महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंशम्' के निम्न चित्रण से अनायास हास फूट पड़ता है –

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः॥

आचार्य क्षेमेन्द्र की कृतियों में हास्य-व्यंग्य का समीचीन प्रयोग हुआ है। रामायण मंजरी में-

रामचन्द्रस्य विवाहसमये जनककन्या सह (पितृ - कन्या भगिन्या सह) विवाहसंबंधसंपादनम् 'अजवंशजानाम्' (छागीवंशजानाम्) एवानुरूपम् इति प्रकारको निर्दोषो हासपरिहासः प्रयुक्तः।

संस्कृत साहित्य में चार्वाक की उक्तियों से प्रखर व्यंग्य का विस्फोट हुआ है। उन्होंने निर्भीकता से वैदिक कर्मकाण्ड एवं ब्राह्मण कर्म-धर्म पर तीखा प्रहार किया है। उनकी हर पंक्ति में सुधारमूलक व्यंग्य की आभा विद्यमान है, जैसे-

'गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिर्वारिता।
गच्छतामिह जन्तूनां वृथा पाथेयकल्पनम्।''

परवर्ती व्यंग्य-अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए डॉ0 बापूराव देसाई लिखते हैं, 'यद्यपि निबंध साहित्य विधा आधुनिक काल की देन है, पश्चिम के प्रभाव से विकसित साहित्य विधा है, मात्र व्यंग्य का अस्तित्व हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के विविध कालखण्डों में प्राप्त है।'[1] आदिकाल में सिद्ध एवं नाथ साहित्य का अस्तित्व 7वीं सदी से 13वीं सदी तक रहा। डॉ0 जगदीश शरण ने भी आदिकालीन प्रसिद्ध ग्रंथों में 'बौद्धगान दोहा' को समाविष्ट किया है जिनके रचयिता – सरहपा एवं कण्हपा, सिद्ध एवं नाथ साहित्य के अन्तर्गत प्रमुख सिद्ध कवि हैं। डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी ने सिद्ध साहित्य में वर्णित व्यंग्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'सरोजवज्र (सरहपा) विद्वान कवि ने पाखण्ड और आडम्बर का विरोध कर वैदिक विधानों पर व्यंग्य प्रहार किए हैं'[2] इसके अतिरिक्त नाथ साहित्य के अन्तर्गत नाथों के आदि गुरु गोरखनाथ ने अपने गुरु मछिन्दर नाथ (मत्स्येन्द्र नाथ) की नारी-भोग प्रधान साधना-पद्धति का विरोध किया था। 'नाथ सम्प्रदाय काव्य में व्यंग्य का अस्तित्व मिलता है।'[3] नाथ सम्प्रदाय में मूर्तिपूजा और बहुदेववाद के लिए कोई स्थान नहीं था। इस प्रकार आदिकाल में सिद्ध एवं नाथ साहित्यों में व्यंग्य का रूप देखने को मिलता है पर निबन्ध रूप में नहीं, काव्य रूप में। इस सम्बन्ध में डॉ0 हरिसिंह पाल, जिनकी कृति – 'सिद्ध एवं नाथ साहित्य', इंदिरा गांधी रा0 मु0 विश्वविद्यालय की स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है, ने भी मुझे जून 2004 में पत्र भेजकर अवगत कराया कि 'सिद्ध और नाथ कवियों के कार्यकाल में हिन्दी गद्य साहित्य विकसित ही नहीं हुआ था अतएव उस काल में व्यंग्य निबन्ध तलाशना असम्भव है। हाँ, सिद्ध और नाथ संत कवियों ने प्रारम्भिक हिन्दी संत काव्य का सूत्रपात किया था। कबीर की भाँति उनके पदों में व्यंग्य विशेष रूप से तत्कालीन समाज की सामाजिक विडम्बनाओं और अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य भाव मिलता है।'[4]

सिद्ध एवं नाथ साहित्य के अंतिम काल में सन् 1196 ई0 में अमीर खुसरो का प्रादुर्भाव हुआ। इनका काल तेरहवीं सदी का रहा। इनका जन्म एटा जिले के पटियाली गांव में हुआ और इनका सम्बन्ध बलबन से लेकर मुबारक शाह तक कई पठान राज दरबारों से रहा। अमीर खुसरो का साहित्य केवल मनोरंजन करने वाला रहा। व्यंग्य के हास्य पक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया गया और वह भी पद्य रूप में।

व्यंग्य के क्रमिक विकास में चौदहवीं सदी और पन्द्रहवीं अर्द्ध सदी के प्रमुख नायक के रूप में कबीर को माना गया है। 'मध्यकाल में कबीर जी ने सामाजिक विसंगति, जातिभेद, अंधश्रद्धा, हिन्दू-मुस्लिम धर्म का आडम्बर आदि कई दोषों पर तीखा प्रहार किया है।'[5] आपने अपनी रचनाओं में आडम्बर और पाखण्ड का विरोध-भाव, सिद्धों एवं नाथों की अक्खड़ता से ग्रहण किया है। डॉ0 जगदीश शरण ने स्पष्ट किया है कि 'कबीर-साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश वही है जिसमें उन्होंने छुआछूत और सामाजिक अन्याय के विरोध में अपनी आवाज उठाई है। सामाजिक दृष्टि से कबीर का यह विद्रोह सर्वथा उचित ही था।'[6] परन्तु कबीर का यह विद्रोह भी पद्यात्मक था।

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) महात्मा गांधी शासकीय महाविद्यालय, खरसिया जिला- रायगढ़ (छ.ग.) भारत

सोलहवीं शती में श्री सायणमाधवाचार्य ने भारतवर्ष के मुख्य सोलह दर्शनों पर एक 'सर्वदर्शन संग्रह' नामक पुस्तक लिखी। यह 'सर्वदर्शन संग्रह' पृथक-पृथक दर्शनों पर निबन्धों का संग्रह है। ..... प्रथम दर्शन चार्वाक दर्शन है। ..... श्री सायणमाधवाचार्य ने अपने निबन्धों में चार्वाक-दर्शन को यथावत् निरूपित न करते हुए अपने दृष्टिकोण से विवृत किया है। निबन्ध का प्रस्ताव भी आधुनिक ढंग से ही लिखा गया है-

दुरुच्छेदंहि चार्वाकस्य ..... पुनरागमन् कुत:॥ चार्वाक ने जो कुछ किया है उसका निर्मूलन करना कठिन है। प्राय: प्राणिमात्र की यही धारणा होती है, जब तक जीवित हों सुख से रहें, मृत्यु के पश्चात् पुनरागमन नहीं होता है, यह चार्वाक दर्शन का सार है। साधारण जन समुदाय इस लोकोक्ति को अपनाते हुए 'काम' को ही परम पुरुषार्थ समझते हैं और पारलौकिक अर्थ से दृष्टि हटाकर चार्वाक मत का ही अवलम्बन करते हैं। इसीलिए चार्वाक मत का 'लोकायतम्' यह भी एक नाम है। प्रस्ताव के पश्चात् विवरण भी हास्य व्यंग्यात्मक दृष्टि से किया गया है। जैसे-

'तच्चैतन्यविशिष्ट देह एवात्मा देहातिरेकानंगीकारेण प्रामाण्याभावात्। अंगनापरिरंभनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थ:। न चास्य दु:ख संभिन्नतया पुरुषार्थत्वमेव नास्तीति मन्तव्यम्। अवर्जनीयतयाप्राप्तस्य दु:खस्य परिहारेण सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात्। तथा मत्सार्थी सशकलकान्स कण्टकान्मत्सानु पादते सयावदादेयं तावदादाय निवर्तते। तस्माद् स्वमयाज्ञानुकूलवेदनीयं सुखं त्यक्तुमुचितम्। नहि मृगा: सन्ति इति शालयो नोप्यन्ते। नहि भिक्षुका: सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते। यदि कश्चिद्भीरुर्दृष्टं सुखं त्यजेत्हि स पशुवन्मूर्खो भवेत्। अर्थात् यह चैतन्य विशिष्ट देह आत्मा है। इस हेतु देह से भिन्न अन्य किसी भी वस्तु का ग्रहण नहीं होता, क्योंकि उसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। कामिनी के आलिंगन से मिलने वाला सुख ही पुरुषार्थ है। इसका दु:ख से साथ होने के कारण वह पुरुषार्थ है ही नहीं, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है। जिसे निवारित नहीं कर सकते ऐसे दुख का परिहार करके सुख का उपभोग होने के कारण वह पुरुषार्थ ही है। जैसे मछली खाने वाला, जितनी मछली चाहिए उतनी मछलियों को काटें के साथ लेता है, या चावल खाने वाला उतने ही आवश्यक चावल ग्रहण करता है। उसी प्रकार दु:ख के भय से प्रिय संवेदना देने वाला सुख, छोड़ नहीं देना चाहिए। मृगों के भय से कोई खेत बोना नहीं छोड़ता। भिक्षुक के कारण कोई रसोई करना बन्द नहीं करता। यदि कोई भीरू, प्राप्त सुख को छोड़े तो वह मनुष्य पशु के समान मूर्ख है।'[8]

सोलहवीं शताब्दी में भी व्यंग्य का रूप यदा-कदा दिख जाता है। इस शती में व्यंग्य का रूप सामाजिक विरोध के रूप में प्रस्फुटित हुआ। 1544 ई० में जन्मे दादू (दादूदयाल) ने व्यंग्य परम्परा को आगे बढ़ाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। डॉ० जगदीश शरण ने दादू के सम्बन्ध में लिखा है कि 'सामाजिक अन्याय के विरोध में भी इनका स्वर बड़ा ही विनम्र रहा है।'[9]

उन्नीसवीं सदी में व्यंग्य का विद्रोही भाव, समाज सुधारकों में देखा जा सकता है। तत्कालीन सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास किए गए। इसके लिए दलित एवं सड़ांध सांस्कृतिक मान्यताओं के विरूद्ध 'विद्रोही मशाल' लिए राजाराम मोहनराय दृष्टिगोचर होते हैं। 'उन्होंने बताया कि बंगाल में सती प्रथा दस गुनी अधिक है जिसका कारण बहुविवाह प्रथा है। बहु विवाह का कारण नारी जाति का सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रहना है। पिता अपनी पुत्री के लिए आर्थिक स्वावलम्बन ढूँढता है तथा पति अपनी सम्पत्ति सुरक्षित रखने के लिए पुत्र प्राप्ति के लिए कई शादियों की छूट पा लेता है।'[10] राजाराम मोहनराय के समकालीन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर क्रांति की। समाज में चली आ रही परम्परा को बदलकर उसके स्थान पर युग-सम्मत, विज्ञान-सम्मत और समाजोपयोगी नियम लागू करने के प्रयास किए गए। लेकिन ये परिवर्तन उन धर्म के ठेकेदारों को नागवार गुजरा जिन्होंने परम्परा को सिर्फ अपने हित में कैद कर रखा था या कहें, तत्कालीन अशिक्षित मानसिकता ने बेकार हो चुकी संस्कृति के मोहपाश से उबरने का असफल प्रयास भी नहीं किया। परन्तु राजाराम मोहनराय या स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा किए गए कार्य, कई संस्था या अपसंस्कृत लोगों के लिए विद्रोह का भाव ही साबित हुए जो व्यंग्य ही था। 'आर्य समाज में क्रान्ति, अंग्रेजों के कार्य और व्यवहार की स्पष्ट प्रतिक्रिया तथा हिन्दुत्व की स्थापना का प्रयत्न विशेष था।'[11] सदियों से चली आ रही परम्परा को तोड़कर एक नए कीर्तिमान स्थापित करना बहुत बड़ा जोखिम का काम था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्रियों को पुरूष के समान अधिकार दिलाने का प्रयास किया। 'सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत उन्होंने नारी शिक्षा, बाल-विवाह तथा पुरूष के सम्मुख नारी की अधीनता के प्रश्न को उठाया और नारी को समाज में पुरूष के समान स्थान दिलाने की दिशा में प्रयत्न किए।'[12] इसी प्रकार हिन्दुओं की महान संस्कृति के परिचायक 'सती प्रथा' का अन्त कर राजाराम मोहनराय ने उन सबके धार्मिक मनोभावों को आहत किया।

आगे बढ़ने पर 1861 ई० में माइकेल का 'मेघनाद वध' आता है जो अपरम्परावादी, पुराण विरोधी रहा। इससे प्रेरित होकर भारत के कवियों के लिए पुराण-कथाओं को नए युग की दृष्टि देना अनिवार्य हो गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'दादा' श्रीराम ठाकुर - स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत काव्य में हास्य-व्यंग्य, पृ० 17
2. देसाई, डॉ० बापूराव - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार, पृ० 51
3. तिवारी, डॉ० बालेन्दु शेखर - हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृ०.81
4. ——— तदैव ———
5. डॉ० हरिसिंह पाल द्वारा डॉ० रमेश रावन को लिखे पत्र दिनांक 24.6.2004
6. देसाई, डॉ० बापूराव - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबन्धकार, पृ० 51
7. शरण, डॉ० जगदीश - उपकार हिन्दी, पृ० 28
8. शर्मा, डॉ० ओंकार नाथ - हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० 26-27
9. शरण, डॉ० जगदीश - उपकार हिन्दी, पृ० 28
10. जोशी, चण्डी प्रसाद -हिन्दी उपन्यास:समाज शास्त्रीय विवेचना, पृ० 7
11. ठाकुर, प्रो० देवेश - आधुनिक हिन्दी साहित्य की राजवतावादी भूमिकाएँ, पृ० 124
12. ——— तदैव ———

***